सवारी साइकिल की

पल्लव

बच्चों की पत्रिकाएं हिंदी साहित्य की दुनिया में एक आह का विषय है। आह पराग। आह बालसखा। बावजूद नंदन, बाल भारती, नन्हे सम्राट और चम्पक जैसी अच्छी-बुरी पत्रिकाओं के मान लिया गया है कि राष्ट्रभाषा की तरह बाल पत्रिकाओं की यह लड़ाई भी हम हार गए हैं। इस तथ्य की गहराई में जाने की जरूरत है कि ऐसा होने के क्या कारण थे? कहीं यह उसी भारतीय मध्यवर्गीय हिन्दीभाषी मनोवृत्ति का परिणाम तो नहीं जो लिखाई-पढ़ाई को आनंद या जीवन को बेहतर बनाने की साधना नहीं बल्कि कैरियर से जोड़ती है। जब बड़ी आयु वर्ग के हिन्दी भाषी लोग उपहार में किताब लेने-देने को फालतू समझते हैं तो वहां बाल साहित्य के संबंध में कोई क्रन्तिकारी उम्मीद रखना हास्यास्पद है। एकलव्य संस्थान की 'चकमक' ने ठीक-ठाक अवधि तक लघु पत्रिकाओं की तरह यह मोर्चा संभाले रखा लेकिन अब वहां भी स्थिति गड़बड़ लगती है। लम्बे समय से चकमक के संपादक रहे शशि सबलोक व सुशील शुक्ल ने पहले अधिक छोटे बच्चों के लिए 'प्लूटो' नाम से एक पत्रिका निकाली और अब वे 'साइकिल' लेकर आए हैं। इसे दोमाही पत्रिका के रूप में निकालने की योजना है और ध्यान से देखें तो इसका स्वरूप और संकल्पना लगभग चकमक जैसी ही हैं। विज्ञान पत्रिका का टैग लगाए बिना सामाजिक-सांस्कृतिक और तार्किक सामग्री से भरी यह पत्रिका वैज्ञानिक दृष्टिकोण लिए है। प्रवेशांक की सामग्री निश्चय ही शानदार है और पत्रिका के प्रति खासी उम्मीद जगानेवाली है। किस्से-कहानियां, संस्मरण, यात्रा वृतांत, कविताएं और ढेर सारी पठनीय सामग्री से भरे इस अंक के रचनाकार विनोद कुमार शुक्ल, असगर वजाहत, अरुण कमल, अनामिका, कृष्ण कुमार, प्रियम्वद, चित्रकार अखिलेश, उदयन वाजपेयी, इरशाद कामिल, कृष्ण बलदेव वैद, प्रभात, नरेश सक्सेना, राजेश जोशी, विष्णु नागर, अशोक भौमिक और मंगलेश डबराल जैसे जाने-माने हिंदी लेखक हैं तो दूसरे कुछ और लेखकों का भी योगदान इस अंक में है।

अंक की सबसे शानदार रचनाएं हैं कृष्ण कुमार का यात्रा वृत्तांत और विनोद कुमार शुक्ल की कहानी। कृष्ण कुमार सिरोंज की यात्रा पर हमें ले जाते हैं जो मध्य प्रदेश का एक छोटा-सा कस्बा है। असल में सिरोंज से थोड़ा आगे एक स्थान है उदयगिरि, जहां पांचवी-छठी सदी में चट्टानी पहाड़ी गुफाओं में मूर्तियां तराशी गई थीं। कृष्ण कुमार उदयगिरि के किस्से सुनाते हुए हीलियोडोरस का स्तम्भ दिखाते हैं जो एक ग्रीक विद्वान था और तक्षशिला में रहता था। वह तक्षशिला से चल कर उदयगिरि आया था। अब सिरोंज का बाजार देखिये जिसमें ऐसी दूकानें हैं जो जमीन के नीचे से लेकर छठी सातवीं मंजिल तक हैं। यानी कि इन दुकानों में आप ऊंट पर बैठे-बैठे खरीददारी कर सकते हैं। तो ऐसे दिलचस्प स्थान की सैर के मजे में कृष्ण कुमार इतिहास के किस्से सुनाते हुए आगे बढ़ते हैं। असल में यात्रा करना और नयी जगहों, नए लोगों को देखना-मिलना आवश्यक है। यह जीवन को गति देता है और हमें इससे व्यापक होने में मदद मिलती है। कोई राहुल सांकृत्यायन जैसा घुमक्कड़ न बन सके तब भी यात्राओं में दिलचस्पी उसे बेहतर मनुष्य बनाएगी। विनोद कुमार शुक्ल की कहानी एक बाल मान्यता पर लिखी गई है जिसके अनुसार एक रुपये के नोट के बराबर

कागज पर यदि चील की छाया पड़ जाए तो वह भी नोट बन जाता है। जाहिर है सबका अपने बचपन में इस तरह की किसी न किसी मान्यता से वास्ता पड़ा है। और सत्यजीत राय के शब्दों में 'इट इज सिली टू डिसबिलिव'। एक मजेदार कहानी को पढ़कर किसे आनंद न मिलेगा?

यहां आई कुछ रचनाएं ऐसी हैं जो न कहानी हैं न निबंध फिर भी इनको पढ़ना रोचक है। अरुण कमल ने साइकिल शीर्षक से एक आलेख में साइकिल का इतिहास नहीं बताया है वरन साइकिल की सवारी करवाई है। यह सवारी साइकिल चलाने के सुखों की याद दिलाती है और फिर साइकिल चलाने का उत्साह पैदा करती है। वे साइकिल चलाने के साथ प्रकृति के जुड़ाव की व्याख्या करते जाते हैं जिसे पढ़कर याद आता है कि हवा, जमीन, गंध, बादल, खेत, पेड़ सब हमारे आस-पास की चीजें तो हैं लेकिन क्या हम उनसे दूर नहीं होते जा रहे? प्रभात की रचना 'घण्टियां' भी प्रकृति से मनुष्य के गहरे संबंध की पुनर्व्याख्या है। मशीनी सभ्यता के चलते भले पशुओं और खेतीबाड़ी से लोग दूर होते जा रहे हों लेकिन इनकी स्मृति की उष्मा फिर हम मनुष्यों को प्रकृति के करीब ले जाती है। इस रचना के साथ दिया गया अतनु राय का चित्र इतना सुन्दर है कि पाठकों की निगाह न हिले। चन्दन यादव की ऐसी ही रचना 'इंजन और कौए' इस अंक में है जिसमें इंजन से लेखक का बेहद दिलचस्प संवाद आया है। व्यंग्य की शक्ल में लिखी गई विष्णु नागर की कहानी 'प्रधानमंत्री की छींक' एक साथ व्यंग्य और विडम्बना से पाठकों का साक्षात्कार करवाती है। देखिये- ''प्रध ाानमंत्री ने छींकते-छींकते ही इशारों में पूछा, आप क्यों छींक रहे हैं? वह प्रधानमंत्री के सचिव थे मगर प्रधानमंत्री से झूठ नहीं बोल सकते थे। उन्होंने कहा, सर आप छींक रहे हैं, इसलिए मैं भी आपके समर्थन में छींक रहा हूं। आप ही मेरे ईश्वर, मेरे भाग्य विधाता, यहां तक कि अब मेरे माता-पिता भी आप ही हो। प्रधानमंत्री ने कहा, तब ठीक है। खूब छींको और जब तक मैं छींकता रहूं, तुम भी छींकते रहो। मगर इतनी जोर-से मत छींकना कि मेरी छींक पर तुम्हारी छींक हावी हो जाए। प्रोटोकॉल का ध्यान रखना वरना डिसिप्लिनरी एक्शन ले लूंगा।''

गालिब पर अमर फारुकी का आलेख, तरबूजों पर राजेश जोशी का लेख, अंजीर पर गणेशराम का लेख, सांप बचाने वाले विकास सोनी से साक्षात्कार और क्रिकेट से जुड़े ईश्वर पर संदीप जोशी का लेख इस अंक की अन्य बढ़िया रचनाएं हैं। नरेश सक्सेना की एक कविता अंक में आई है -

दरवाजा बारिश में भीगा / फूल गया है / हम समझे कि / कभी पेड़ था / भूल गया है।

लेकिन यह कह देना अनुचित न होगा कि अंक में चित्रकथाओं और दूसरी सामग्री के बढ़िया संयोजन के बावजूद कविताओं की अनुपस्थिति है। अज्ञेय की एक प्रसिद्ध कविता की नयी और सुन्दर व्याख्या नरेश सक्सेना ने की है लेकिन नयी और सुन्दर कविताएं अंक में न होना खटकता है। शायद इसलिए अंतिम आवरण पर बाबा नागार्जुन की हस्तलिपि में ही 'अकाल और उसके बाद' दी गई हो।

इस अंक में दो ऐसी रचनाएं आई हैं जिनमें मृत्यु का उल्लेख है और ये रचनाएं फिर से उस बहस को छेड़ती हैं कि बच्चों के साहित्य में मृत्य और हिंसा जैसी बातों की कितनी जगह होनी चाहिए या बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। सुशील शुक्ल की कहानी 'साइकिल और पेड़' में दूधवाले का किस्सा है जो अब संसार में नहीं है। वाक्य है- 'एक दिन दूध वाला अपनी गाय चराने गया। ऐसा गया कि फिर नहीं लौटा। कुछ चरवाहे उसकी लाश उसके घर छोड़ गए। उसकी परछाई थोड़ी देर उसके पास लेटी रही। उसे कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया।' बर्तोल्त ब्रेख्त की एक कहानी इस अंक में है जिसमें भी मृत्यु का प्रसंग है- 'सात साल गुजर गए। एजेंट सोते, खाते-पीते, आदेश देते-देते एक दिन मर गया।' सवाल यह है कि मृत्यु का उल्लेख बच्चों के साहित्य में हो या न हो? कथाकार स्वयं प्रकाश ने एक जगह लिखा है कि 'हम बच्चों को बच्चा समझते हैं इससे बड़ी भूल और कोई नहीं। हमें उन्हें बच्चा नहीं नन्हा नागरिक समझना चाहिए।' शायद यह उत्तर खोजने का सही रास्ता है। केवल फिल्म और टीवी की वजह से ही नहीं बच्चे अपने परिवेश को उतनी ही गंभीरता से देखते-समझते हैं जितना कि बड़े। फिर मृत्यु या हिंसा का कोई भी प्रसंग उनके लिए वर्जित समझना भूल होगी। निश्चय ही उस प्रसंग की सार्थकता इस बात में होगी कि इस प्रसंग का उद्देश्य रचना के संबंध में कितना सही है।

अंक में रचनाओं के साथ आए चित्रों के संबंध में बात की जानी चाहिए। ये चित्र अतनु राय, प्रोइती रॉय, प्रिया कुरियन, भार्गव कुलकर्णी, वंदना बिष्ट, तापोषी घोषाल, सुजाशा दासगुप्ता, तापस गुहा, सागर अरण कल्ले, देवब्रत घोष, दीपा

बलसावर, नबरीना सिंह और चंद्रमोहन कुलकर्णी ने बनाए हैं। अतनु राय को पाठक जानते हैं लेकिन दूसरे चित्रकारों का काम भी कम आकर्षक नहीं है। रंगों का चयन और चित्रों की सुगढ़ता पाठकों की कल्पनाशीलता को विकसित करने में समर्थ है। खासकर अतनु राय तो अपने क्षेत्र में अद्भुत काम करते हैं। उनके चित्र किसी भी रचना को दुहरा तिहरा प्रभावशाली बनाने में समर्थ हैं। अब यहां हम चंदामामा और नंदन के पौराणिक रूप रंगों वाले चित्रों को याद करें तो आधुनिकता का अर्थ ठीक से समझ आएगा। जिस रचना से हमें रोशनी मिलनी चाहिए वह पीछे ले जाने लगे तो इससे बुरा क्या होगा? कल्पनाशक्ति का अभाव और राजा रवि वर्मा का गहरा प्रभाव चंदामामा-नंदन के चित्रों को ठहरी हुई समझ से भर देता था। अच्छा है कि साइकिल के चित्रकार यह बात समझते हैं।

अंत में यह बात की जानी चाहिए कि इस एक अंक की ही कीमत सौ रुपये क्यों है? एक आसान जवाब यह है कि जिस बढ़िया गुणवत्ता के कागज और छपाई से पत्रिका तैयार की गई है उसके लिए सौ रुपये खर्च करना अधिक महंगा नहीं हैं। लेकिन क्या भारत के अधिकांश हिंदीभाषी माता-पिता एक अंक के लिए सौ रुपये खर्च कर सकते हैं? दूसरी बात यह कि इस पत्रिका के संबंध में भारत के हिन्दी भाषी माता-पिता कैसे जानेंगे? क्या इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है? क्या यह सभी अखबार विक्रेताओं के पास है? क्या इसे आसानी से देखा जा सकता है? बाल साहित्य की अव्याप्ति के साथ यह बात जुड़ी है कि इन सभी भले प्रयासों का अर्थ तभी है जब इनकी पहुंच अधिकतम लोगों तक हो। जाहिर है इसके लिए बड़ी पूंजी और बड़ी टीम चाहिए- तो ऐसा क्यों नहीं हो सकता? कब तक हम ऐसा न होने के बहाने खोजते रहेंगे? ◆

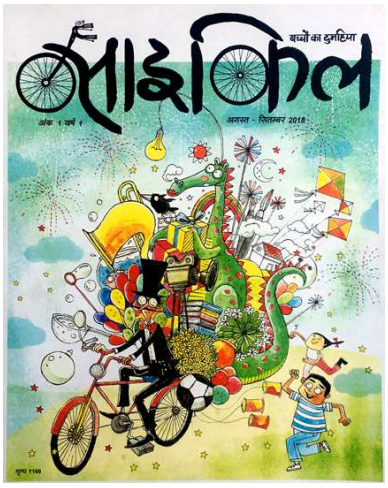

बाल पत्रिका : 'साइकिल'

संपादक : शशि सबलोक, सुशील शुक्ल

प्रकाशक : इकतारा, ई-7/413, एच.आई.जी, प्रथम तल, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016

मूल्य : 100 रुपये (एक प्रति) वार्षिक 600 रुपये

ईमेल : cycle@ektaraindia.in

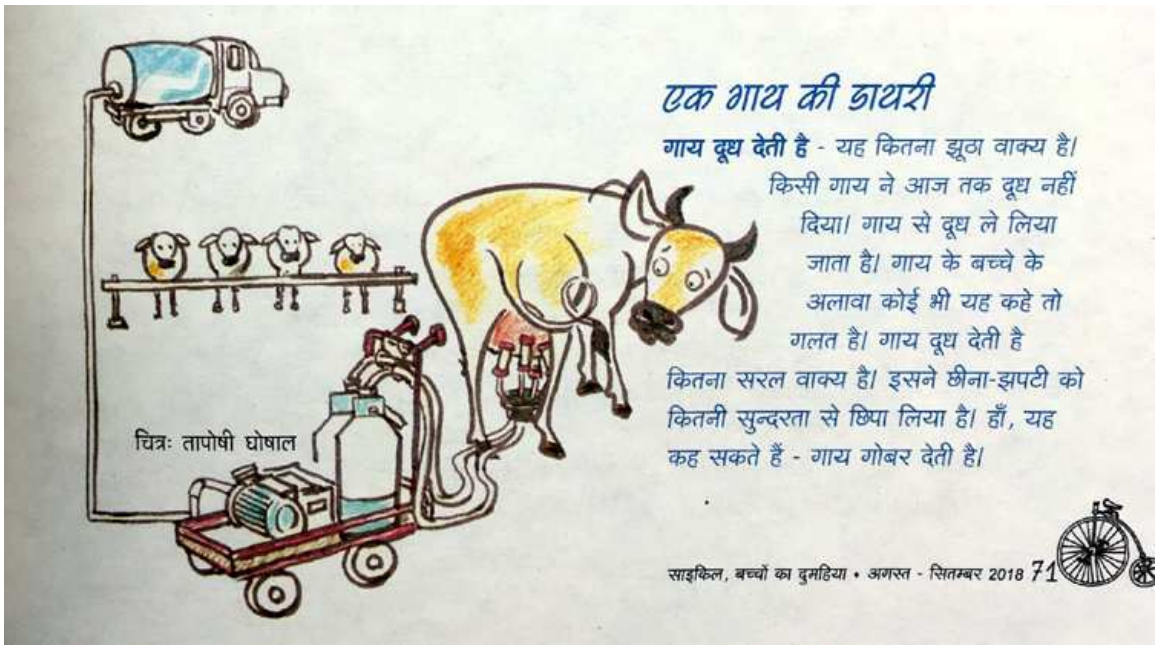

लेखक परिचयः दिल्ली के प्रसिद्ध हिन्दू कालेज में पढ़ाते हैं और 'बनास जन' नाम से एक लघु पत्रिका का संपादन-प्रकाशन करते हैं।

संपर्क : 8130072004; pallavkidak@gmail.com